

ऋग्वेद संहिता

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

भाग-१
(मण्डल १-२)



सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

२५. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाशवांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

हे विश्वेदेवो ! आप सबकी रक्षा करने वाले, सभी प्राणियों के आधारभूत और सभी को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । अतः आप इस सोम युक्त हवि देने वाले यजमान के यज्ञ में पधारें ॥ ७ ॥

२६. विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्त्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥

समय-समय पर वर्षा करने वाले हे विश्वेदेवो ! आप कर्म - कुशल और द्रुतगति से कार्य करने वाले हैं । आप सूर्य-रश्मियों के सदृश गतिशील होकर हमें प्राप्त हों ॥ ८ ॥

२७. विश्वे देवासो अस्त्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥

हे विश्वेदेवो ! आप किसी के द्वारा बध न किये जाने वाले, कर्म-कुशल, द्रोहरहित और सुखप्रद हैं । आप हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हवि का सेवन करें ॥ ९ ॥

२८. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

पवित्र बनाने वाली, पोषण देने वाली, बुद्धिमत्तापूर्वक ऐश्वर्य प्रदान करने वाली देवी सरस्वती ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल बनायें ॥ १० ॥

२९. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

सत्यप्रिय (वचन) बोलने की प्रेरणा देने वाली, मेधावी जनों को यज्ञानुष्ठान की प्रेरणा (मति) प्रदान करने वाली देवी सरस्वती हमारे इस यज्ञ को स्वीकार करके हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥ ११ ॥

३०. महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

जो देवी सरस्वती नदी-रूप में प्रभूत जल को प्रवाहित करती हैं । वे सुमति को जगाने वाली देवी सरस्वती सभी याजकों की प्रज्ञा को प्रखर बनाती हैं ॥ १२ ॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-इन्द्र । छन्द-गायत्री ।]

३१. सुरुपकृत्नुमूतये सुदुधामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

(गो दोहन करने वाले के द्वारा) प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिये सौन्दर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

३२. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन-यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥ २ ॥

३३. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

सोमपान कर लेने के अनन्तर हे इन्द्रदेव ! हम आपके अत्यन्त समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें । आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें (अर्थात् अपने विषय में न बताएँ) ॥ ३ ॥

१२४. मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥२॥

ऊर्ध्वगामी, मेधावी हे अग्निदेव ! हमारी रक्षा के लिए प्राणवर्द्धक-मधुर हवियों को देवों के निमित्त प्राप्त करें और उन तक पहुँचाएँ ॥२॥

१२५. नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

हम इस यज्ञ में देवताओं के प्रिय और आह्लादक (मधुजिह्व) अग्निदेव का आवाहन करते हैं । वह हमारी हवियों को देवताओं तक पहुँचाने वाले हैं, अस्तु, वे स्तुत्य हैं ॥३॥

१२६. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४॥

मानवमात्र के हितैषी हे अग्निदेव ! आप अपने श्रेष्ठ - सुखदायी रथ से देवताओं को लेकर (यज्ञस्थल पर) पधारें । हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४॥

१२७. स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥५॥

हे मेधावी पुरुषो ! आप इस यज्ञ में कुशा के आसनों को परस्पर मिलाकर इस तरह बिछाएँ कि उस पर घृत-पात्र को भली प्रकार रखा जा सके, जिससे अमृततुल्य घृत का सम्यक् दर्शन हो सके ॥५॥

१२८. वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥६॥

आज यज्ञ करने के लिए निश्चित रूप से ऋत (यज्ञीय वातावरण) की वृद्धि करने वाले अविनाशी दिव्य-द्वार खुल जाएँ ॥६॥

१२९. नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥७॥

सुन्दर रूपवती रात्रि और उषा का हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं । हमारी ओर से आसन रूप में यह बर्हि (कुश) प्रस्तुत है ॥७॥

१३०. ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥८॥

उन उत्तम वचन वाले और मेधावी दोनों (अग्नियों) दिव्य होताओं को यज्ञ में यजन के निमित्त हम बुलाते हैं ॥८॥

१३१. इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥९॥

इळा, सरस्वती और मही ये तीनों देवियाँ सुखकारी और क्षयरहित हैं । ये तीनों बिछे हुए दीप्तिमान् कुश के आसनों पर विराजमान हों ॥९॥

१३२. इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥१०॥

प्रथम पूज्य, विविध रूप वाले त्वष्टादेव का इस यज्ञ में आवाहन करते हैं, वे देव केवल हमारे ही हों ॥१०॥

१३३. अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥११॥

हे वनस्पतिदेव ! आप देवों के लिए नित्य हविष्यान्न प्रदान करने वाले दाता को प्राणरूप उत्साह प्रदान करें ॥११॥

१३४. स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥१२॥

(हे अध्वर्यु !) आप याजकों के घर में इन्द्रदेव की तुष्टि के लिये आहुतियाँ समर्पित करें । हम होता वहाँ देवों को आमन्त्रित करते हैं ॥१२॥

३७४. अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।

नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६ ॥

अपने को अप्रतिम योद्धा मानने वाले मिथ्या अभिमानी वृत्र ने महाबली, शत्रुबेधक, शत्रुनाशक इन्द्रदेव को ललकारा और इन्द्रदेव के आघातों को सहन न कर, गिरते हुए, नदियों के किनारों को तोड़ दिया ॥६ ॥

३७५. अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।

वृष्णो वधिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७ ॥

हाथ और पाँव के कट जाने पर भी वृत्र ने इन्द्रदेव से युद्ध करने का प्रयास किया । इन्द्रदेव ने उसके पर्वत सदृश कन्धों पर वज्र का प्रहार किया । इतने पर भी वर्षा करने में समर्थ इन्द्रदेव के सम्मुख वह डटा रहा । अन्ततः इन्द्रदेव के आघातों से ध्वस्त होकर वह भूमि पर गिर पड़ा ॥७ ॥

३७६. नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।

याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव ॥८ ॥

जैसे नदी की बाढ़ तटों को लाँघ जाती है, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल (जल अवरोधक) वृत्र को लाँघ जाते हैं । जिन जलों को 'वृत्र' ने अपने बल से आबद्ध किया था, उन्हीं के नीचे 'वृत्र' मृत्यु-शैल्या पर पड़ा सो रहा है ॥८ ॥

३७७. नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९ ॥

वृत्र की माता झुककर वृत्र का संरक्षण करने लगी, इन्द्रदेव के प्रहार से बचाव के लिये वह वृत्र पर सो गयीं, फिर भी इन्द्रदेव ने नीचे से उस पर प्रहार किया । उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था, जैसे गाय अपने बछड़े के साथ सोती है ॥९ ॥

३७८. अतिष्ठन्तीनामनिवेशानानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।

वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१० ॥

एक स्थान पर न रुकने वाले अविश्रान्त (मेघरूप) जल-प्रवाहों के मध्य वृत्र का अनाम शरीर छिपा रहता है । वह दीर्घ निद्रा में पड़ा रहता है, उसके ऊपर जल प्रवाह बना रहता है ॥१० ॥

[जल युक्त बादलों के नीचे निष्क्रिय बादलों को वृत्र का अनाम शरीर कहा गया प्रतीत होता है ।]

३७९. दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।

अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११ ॥

'पणि' नामक असुर ने जिस प्रकार गौओं अथवा किरणों को अवरुद्ध कर रखा था, उसी प्रकार जल-प्रवाहों को अगतिशील वृत्र ने रोक रखा था । वृत्र का वध करके वे प्रवाह खोल दिये गये ॥११ ॥

३८०. अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सूके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।

अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब कुशल योद्धा वृत्र ने वज्र पर प्रहार किया, तब घोड़े की पूँछ हिलाने की तरह, बहुत आसानी से आपने अविचलित भाव से उसे दूर कर दिया । हे महाबली इन्द्रदेव ! सोम और गौओं को जीतकर आपने (वृत्र के अवरोध को नष्ट करके) गंगादि सातों सरिताओं को प्रवाहित किया ॥१२ ॥

सोमरस को परिष्कृत करने वाले ज्ञानी यजमान के द्वारा आनन्द प्रदान करने के लिए दिये गये अन्न (आहार) को इन्द्रदेव ग्रहण करें, वे इन्द्रदेव तथा ज्ञानी यजमान उत्तम स्थान प्राप्त करें ॥१॥

२१९५. अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।

प्र यद्वयो न स्वंसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥

जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसलों में जाते हैं, उसी प्रकार नदियों की धारायें प्रवाहित होती हैं। ऐसे प्रवाहित सोमपान से आनन्दित इन्द्रदेव ने हाथ में वज्र धारण करके जल को रोकने वाले अहि नामक राक्षस को मारा था ॥२॥

२१९६. स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।

अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३॥

अहि नामक राक्षस को मारने वाले इन्द्रदेव ने अन्तरिक्ष के जल को सीधे समुद्र की ओर प्रवाहित किया, उन्हीं ने सूर्य तथा सूर्यश्मियों को प्रकट किया, जिसके प्रकाश से दिन में होने वाले सभी कार्यों को हम करते हैं ॥३॥

२१९७. सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्वाशुषे हन्ति वृत्रम् ।

सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४॥

जो इन्द्रदेव सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप प्राप्त करने के लिए सब दिन समान रूप से स्पर्धा करते हैं, वे इन्द्रदेव दानशील मनुष्यों के लिए श्रेष्ठ धनों के प्रदाता हैं। वे ही वृत्र राक्षस को मारते हैं ॥४॥

२१९८. स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणद्मर्त्याय स्तवान् ।

आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥

जिस प्रकार पुत्र को पिता अपने धन का एक अंश देता है, उसी प्रकार जब इन्द्रदेव को दान दाता 'एतश' ने यज्ञ के समय अमूल्य तथा उत्तम धन प्रदान किया, तब पूज्य तथा तेजस्वी इन्द्रदेव ने यज्ञ की कामना वाले मनुष्यों के लिए सूर्य को प्रकाशित किया ॥५॥

२१९९. स रन्धयत्सदिवाः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।

दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६॥

उन तेजस्वी इन्द्रदेव ने सारथि कुत्स (कुत्साओं से समाज की रक्षा करने वालों) के निमित्त शुष्ण (शोषक), अशुष (निष्ठुर) कुयव (कुधान्य) नामक आसुरों का संहार किया तथा दिवोदास के निमित्त शम्बरासुर (अशान्ति पैदा करने वालों) के निन्यानवे नगरों को ध्वस्त किया ॥६॥

२२००. एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।

अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! हम अन्न और बल की कामना से आपकी स्तुतियाँ करते हैं। आपने देवों की अवमानना करने वाले तथा हिंसक दुष्टों के हिंसाकारी कृत्यों को नष्ट किया। हम आपसे परम मैत्री भाव बनाये रखें ॥७॥

२२०१. एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।

ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! गृत्समदगण अपने उत्तम संरक्षण की कामना से आपकी उत्तम एवं मनोरम स्तोत्रों के

२४२३. इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५ ॥

जिन मरुद्गणों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव हैं, जिन्हें पोषण देने वाले पूषादेव हैं, वे मरुद्गण हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१५ ॥

२४२४. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६ ॥

हे नदियों, मातृगणों, देवों में सर्वश्रेष्ठ माता सरस्वती ! हम मूर्ख बालकों के समान हैं, अतः हमें उत्तम ज्ञान प्रदान करें ॥१६ ॥

२४२५. त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७ ॥

हे माता सरस्वती ! आपके तेजस्वी आश्रय में ही सम्पूर्ण जीवन-सुख आश्रित है, अतः हे माता ! आप पवित्र करने वाले यज्ञ में आनन्दित होकर हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥१७ ॥

२४२६. इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८ ॥

हे माता सरस्वती ! आप अन्न तथा बल प्रदान करके सत्य मार्ग पर चलाने वाली हैं, अतः देवों को प्रिय लगने वाले गृत्समद ऋषि द्वारा बनाये गये उत्तम स्तोत्र हम आपको सुनाते हैं, आप इन स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥१८ ॥

२४२७. प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९ ॥

हे मंगलकारी द्यावा - पृथिवि ! हव्यवाहक अग्निदेव के साथ आप दोनों का हम वरण करते हैं । आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके यज्ञ में आयें ॥१९ ॥

२४२८. द्यावा नः पृथिवी इमं सिधमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२० ॥

हे द्यावा - पृथिवि ! सुख के साधक तथा आकाश तक हमारी हवि को स्पर्श कराने वाले यज्ञ को आज आप दोनों देवों तक ले जायें ॥२० ॥

२४२९. आ वामुपस्थमद्गुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१ ॥

परस्पर सम्बद्ध रहने वाली (द्रोह न करने वाली) हे द्यावा-पृथिवी देवियो ! आज इस यज्ञ में देवगण सोमपान के निमित्त आपके पास बैठें ॥२१ ॥

[सूक्त - ४२]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गवशौनक ।

देवता-शकुन्त (कपिञ्जल रूपी इन्द्र) । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२४३०. कनिक्रदज्जनुषं प्रबुवाण इयतिं वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१ ॥

जिस प्रकार मल्लाह नाव को चलाता है, उसी प्रकार उपदेश देने वाला शकुनि बार-बार उत्तम वाणी द्वारा प्रेरित करता है । हे शकुनि ! आप सबके कल्याण करने वाले हों । आपको कोई आक्रमणकारी शत्रु किसी भी प्रकार का कष्ट न दे ॥१ ॥